International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 27-29

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 27-29
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 06-01-2015
Accepted: 25-02-2015

डा0 तृप्ति शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence
डा0 तृप्ति शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय

वैदिक चिकित्सा–विज्ञान

डा0 तृप्ति शर्मा

आलोकसामान्यप्रतिभाप्रसूताः, अपौरूषेयाख्य जगति प्रसिद्धाः।
वेदाः विज्ञानयुगाधारभूता। समस्यानामिमे समाधानभूताः ।।
ऋषिभिर्यच्छरीरं रोगमन्दिरं, ज्ञातमित्युपायं तैरेव कारितम्।
जङ् घास्थिशल्यचिकित्सा कृता, संयोज्य लौहयष्टिं विश्पलायाः।।

अलोक सामान्य प्रतिभा का परिणाम होने के कारण अपौरूषेय कृति के रूप में विश्वविश्रुत वेद अक्षय ज्ञान–विज्ञान के स्त्रोत हैं। इनके गर्भ में ज्ञान–विज्ञान के वे सभी क्षेत्र, जो आज भी अपने चमत्कार से लोकमानस को चमत्कृत करने में समर्थ हैं, विद्यमान हैं। भले ही ये सूत्र रूप में ही क्यों न हों। इन्हीं विषयों में से एक विषय है– **चिकित्सा विज्ञान।** 'कित् रोगापनयने' धातु से निष्पन्न 'चिकित्सा' शब्द का अर्थ रोगों की निवृत्ति है। चूंकि वैदिक ऋषि भली–भांति जानते थे कि यह शरीर रोगों का मन्दिर है। इसमें प्रायः आगन्तुक रोग उत्पन्न होते ही रहते है। इन रोगों का उपचार भी आवश्यक है। अतः उन्होंने स्वस्थ जीवन जीने के उपायों पर भली–भांति विचार किया।

वैदिक संहिता के अनुसार रोगोत्पत्ति के तीन कारण है– विषाणु, कीटाणु, (कृमि) एंव त्रिदोष (वात–पित्त–कफ)। इनमें विष शरीर के अन्दर विद्यमान होने पर वह धीरे–धीरे सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है, जिसमें व्यक्ति का जीवन संकट में पड़ जाता है। वेदों में स्थावर एंव जङ्गम के भेद से दो प्रकार का विष माना गया है। इनमे स्थावर विष औषधियों एवं पर्वतों में पाया जाता है, जिसे अभ्रिखात कहा गया है। इस विष को बेचा भी जा सकता है। जङ्गम विष सर्प, बिच्छू, मच्छर आदि में पाया जाता है। किसी–किसी प्राणी के मल–मूत्र में भी यह विष पाया जाता है। यह विष संज्ञाशून्यता की स्थिति में प्राणियों को ला देता हैं और शरीर का रंग बदल देता है। वैदिक ऋषियों का कहना है कि नाना प्रकार के तृणों में कहीं स्थान आदि के लोभ से और कहीं उन तृणों की गंध लेने को अलग–अलग छोटे–छोटे विषधारी जीव छिपे रहते है। वे अवसर पाकर प्राणियों को पीड़ा पहुंचाते हैं–

शरासः कुषरासो दर्भासः सैर्या उत।
मोजा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे सांक न्यलित्सत।। [1]

विष निवारण हेतु कहा गया है कि हे मनुष्यों ! निन्यानवे प्रकार के विषों का नाम, गुण, स्वभाव को जान कर उस विष का प्रतिषेध करने वाली औषधियों को जानकर एवं उनका सेवन कर विष सम्बन्धी रोग को दूर करो –

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम्।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनम्
हरिष्ठा मधु त्वा मधुलता चकार।। [2]

विष को दूर करने वाले तत्त्वों को निर्देश करते हुये कहा गया है कि विष हरण करने वाली पक्षी का पालन कर विष को दूर करें एवं इक्कीस छोटे–छोटे पंखो वाले पक्षी विष रस का पान करने वाले होते हैं, उन पक्षियों से एवं औषधियों से विष का अपहरण करें –

इयत्तिका शकुन्तिका शका जघास ते विषम्।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा
मधु त्वा मधुला चकार।।
त्रिसप्त विष्पुलिङगका विषस्य पुष्यमक्षन्।
ताष्विन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा
मधु त्वा मधुला चकार।। [3]

मधु नामक लता को सर्प एवं बिच्छू के विष का अपहरण करने वाली बताया गया है। पैद्व नामक औषधि से सर्प मारा जाता है –

इंद पैद्वों अजायतेदमस्य परायणम्।
दूरमान्यपर्वतः पदाहिहन्यो वाजिनीवतः।। [4]

सूर्य को भी विषापहारक बतायाप गया है–

सूर्ये विषमासजामि दृतिं सुरावतो गृहे। [5]

रोग का दूसरा कारण कृमि (कीटाणु) है, जो प्रदूषित जल, भोजन, दूध आदि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर रोग का कारण बनते हैं। ऋग्वेद में एक स्थल पर कीटाणु को मानसिक रोग को उत्पन्न करने वाले बताते हुए कहा गया है कि जो तुझे निद्रा से अचेत कर तेरे समीप आता है और तुम्हारी संतति को मिटाना चाहता है, उसे हम यहां से भगा दें–

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि।। [6]

यही कीटाणु का गर्भ नष्ट करने वाला बताया गया है– जो कुरूप रोग गर्भ या योनि भाग में गुप्त रूप से प्रविष्ट हुआ है, अग्नि नामक औषधि उस मांसभक्षी रोगनाशक कीटाणु को सर्वथा नष्ट कर सकती है। इसलिए ऐसे तत्त्वों को दूर किया जाय, जो विभिन्न रूपों का कारण बनते हैं–

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अनिष्टं ब्रह्माणा सह निष्क्रव्यादमनीनशन्।।
अस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि।
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरारेढिह तमितो नाशयामसि।।
यास्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि।। [7]

राजयक्ष्मा के विविध प्रकारों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि शरीर के प्रत्येक अंग में व्याप्त यक्ष्मा रोग को दूर किया जा सकता है। [8]
इस प्रकार दृष्ट एंव अदृष्ट अनेक प्रकार के कीटाणुओं का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है। सूर्य को इनका नाशक कहा गया है। सूर्य के समान विषहर्त्ता वैद्य भी इन कीटाणुओं को नष्ट करे –

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः।। [9]

ऋग्वेद में उल्लेख है कि वरुण का एक भव्य औषधालय था, जिसमें हजारों की संख्या में वैद्य औषधियों का निर्माण करके रोगो को दूर करते थे –

शतं ते राजन् भिषजः सहस्त्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्ट अस्तु।
वाधस्व दूरे निर्ऋति पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत्।। [10]

उत्तम औषधियों के लिए उत्तमज्ञान आवश्यक है। चिकित्सक प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे प्रभो! अनेक रूप एवं जीवों को पालने में समर्थ रसादिपूर्ण औषधियों का, जो तीनों ऋतुओं में उत्पन्न होती है, उनका ज्ञान हमें अवश्य प्राप्त कराओ और हम उनके प्रभाव एवं सामर्थ्य को अवश्य जानें –

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च।। [11]

चिकित्सकों को आपस में विचार–विमर्श कर रोगोपचार का निर्देश किया गया है –

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।
ताः सर्वाः संविदाना इदं में प्रावता वचः।। [12]

कुशल चिकित्सक विभिन्न रोगों के उपचारार्थ औषधियों का निर्माण करते है, जिनके सेवन से यक्ष्मा, कफजन्य एवं सन्निपातक आदि सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं–

सांक यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना।
सांक वातस्त ध्राज्या साकं नश्य निहाकया।। [13]

शल्य–चिकित्सक के द्वारा भी रोगोपचार किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, युद्ध में राजा खेल की पत्नी विश्पला की जंघा की हड्डी टूट जाने पर शल्य–क्रिया के द्वारा उसकी जाँघ में लोहे की छड़ लगाकर उपचार किया गया था –

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि वर्णमाजा खेलस्य परितवभ्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।। [14]

चिकित्सक अश्विनी कुमारों ने असली सिर को हटाकर घोड़े का सिर लगा दिया और पुनः मधुविद्या के कारण असली सिर लगा दिया –

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्नवृष्टिम्।
दध्यङ्ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच।। [15]

नाड़ी रोग का उपचार शल्य–क्रिया द्वारा किया जाता था। इसका स्पष्ट उल्लेख करते हुए कहा गया है नाडियाँ रुधिर संचार का मार्ग होने से रक्षणीय हैं। जब किसी प्रकार रोग के कारण चिकित्सक नाड़ी छेदन करे और यह रुधिर अधिक बहने लगे तो वह रुधिर बहना बन्द कर दे–

अमूर्या वन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः।। [16]

पके हुए फोड़े का शालाका द्वारा शल्य–क्रिया कर उपचार किया जाता था। मूत्रघात रोग में मूत्रशलाका से मूत्र निकाला जाता था –

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्र वेशन्त्या इव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।। [17]

भूख, प्यास सम्बन्धी रोग में – अपामार्ग नामक औषधि लाभदायक बतायी गयी है –

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वाया वयं सर्व तपद मृज्महे।। [18]

शारीरिक चिकित्सा के साथ मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर भी वेदों में वर्णन है। आजकल राष्ट्रीय सेवा योजना, बाल कल्याण परिषद, नेहरू युवा केन्द्र आदि के माध्यम से भारत सरकार मानसिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर विशेष बल दे रही है। वैदिक ऋषियों ने शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। आज भौतिकवादी जीवन जीने के लिए माता–पिता की अपेक्षा पर खरे न उतरने वाले बच्चे अवसादग्रस्त हो जाते हैं। अवसाद से मुक्त करने के लिए एवं दृढ़ इच्छा'–शक्ति को मजबूत बनाने के लिए एवं उसे उत्साहित करने के लिए वैदिक ऋषि कहता है –

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा।
निरवोचमहं यक्ष्मङ्गेभ्यों अङ्गज्वरं तव।। [19]

आध्यात्मिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में भावना करने की बात कही गयी है। अथर्ववेद में कहा गया है कि हे व्याधिग्रस्त जीव! तुम्हारे ऊपर न कहे हुए प्रत्येक अंग में, सम्पूर्ण रोमकूपों में और प्रत्येक जोड़ में जो रोग हो गया है, उस रोग को मैं दूर करता हूँ और तुम्हारी त्वचा में हुए रोग आदि को दूर करता हूँ। तुम्हारे नेत्र आदि सम्पूर्ण अंगों में व्याप्त रोग को दूर करता हूँ–

अंगे अंगे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि
यक्षमं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्च विवृहामसि। [20]

उपर्युक्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि वैदिक काल में चिकित्सा विज्ञान अपनी उत्कर्ष की अवस्था में था। उक्त विषयक अनुशीलन से यह पता चलता है कि उस समय चिकित्सा–विज्ञान की एक बृहद्–प्रयोगशाला थी, जिसमें विविध रोगों की निवृत्ति हेतु औषधियों का लाभ प्राप्त कर सकते थे। जिन रोगों का आज या आज से कुछ समय पहले तक एलोपैथी (विपरीत चिकित्सा पद्धति) में उपचार सम्भव नहीं है या था, उसके उपचार हेतु वेदों में औषधियाँ बतायी गयी है। इसलिए आज के वैज्ञानिक एवं चिकित्सकों को वैदिक चिकित्सा विज्ञान को पढ़ना चाहिए। अन्त में हम यह कह सकते है कि वेद आज की समस्त चिकित्सा पद्धतियों के उपजीव्य है। उल्लेखों से यह भी संकेत होता है।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद 1/191/3
2. वही 1/193/13

3. वही 1/191/11–12
4. अथर्ववेद 10/4/6
5. ऋग्वेद 1/191/10
6. वही 10/162/6
7. वही 10/162/2–5
8. वही 10/163/1–6
9. वही 1/191/8
10. वही 1/24/9
11. वही 10/97/1
12. वही 10/97/14
13. वही 10/97/13
14. वही 1/116/15
15. वही 1/116/12
16. अथर्ववेद 1/17/1
17. वही 1/3/7
18. वही 4/17/6
19. वही 5/30/8
20. वही 2/33/77